International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232, Impact Factor: RJIF 5.22
www.hindijournal.com
Volume 3; Issue 3; May 2017; Page No. 96-99

प्राचीन संस्कृत साहित्य में वर्णित पाप कर्म और उनसे मुक्ति के उपायों की वर्तमान संदर्भ में प्रासंगिकता

साधना सहाय

प्राचाया इ०ने०म०स्ना०महा०, मेरठ (उ०प्र०), भारत

प्रस्तावना

प्राचीन काल से ही भारतीय जनमानस में पाप सम्बन्धी अवधारणा प्रायः सभी जातियों, धर्मों, विभिन्न मतावलम्बियों में किसी न किसी रूप में विद्यमान रही है। प्रत्येक मनुष्य से जीवनकाल में जाने अनजाने में कभी–न–कभी कोई–न–कोई पाप कर्म हो ही जाता है। यह भी एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि क्रूर से क्रूर या हिंसक पापी भी जीवन में अपने बुरे कर्मों से छुटकारा चाहते हैं। दुर्दान्त डाकू भी एक सभ्य और पाप रहित जीवन जीना चाहता है। ऐसे अनेक उदाहरणों, किस्से, कहानियों के दृष्टान्त समाज में उपलब्ध हो जाते हैं जैसे– डाकू अंगुलीमार, चम्बल घाटी के दस्यु आदि। महात्मा बुद्ध के उपदेशों से प्रभावित अंगुलीमार अपना बुरा जीवन त्यागकर उनका अनुयायी बन जाता है। इसी प्रकार चम्बल घाटी के डाकू स्वेच्छा से शस्त्र त्यागकर समाज की धारा से जुड़कर मुख्य रूप से खेती के कर्म से जुड़ गए।

वर्तमान में समाज में पुनः अनैतिकता, भ्रष्टाचार तथा पाप कर्मों में उत्तरोत्तर वृद्धि दृष्टिगत हो रही है। आज का मनुष्य इतना कृतघ्न हो गया है कि वह हत्या, बलात्कार, अपहरण आदि अनेकानेक कुकृत्यों से भी नहीं घबराता। अतः पुनः एक यक्ष प्रश्न सबके सम्मुख उपस्थित हो गया है कि भारत में विश्व का वृहद्तम् संविधान होने पर भी तथा न्यायपालिका के रहते ऐसे जघन्य अपराधों की बाढ़ सी क्यों आ गयी है?

इन प्रश्नों पर विचार करने से पहले यह जानना नितान्त अनिवार्य है कि पाप है क्या? भारतीय शास्त्रों के अनुसार कौन–कौन से कर्म पाप की श्रेणी में आते हैं। जाने अनजाने में ये पाप कर्म मनुष्य से क्यों हो जाते हैं और हो जाने पर उनसे मुक्ति का क्या मार्ग है? प्राचीन काल में शास्त्रों में वर्णित मुक्ति के इन पाप कर्मों से मार्गों में तथा आधुनिक समय के समाज में कोई प्रासंगिकता है अथवा नहीं। ऐसे अनेक अनुत्तरित प्रश्न मनप्राणों को मथते रहते हैं। इन पाप कर्मों के विषय में जानना तथा सचेत रहना भी आवश्यक है क्योंकि यदि मनुष्य को यही ज्ञान नहीं होगा कि क्या कारणीय है और क्या अकरणीय तब तक वह अपने जीवन के पथ पर कैसे आगे बढ़ेगा? कौन–सा मार्ग चुनेगा? एक सभ्य, संस्कारी सम्पन्न एवं शालीन समाज की स्थापना तभी सम्भव है जब उसका समाज बुराईयों को जाने तथा उनके प्रति सचेत रहे।

संस्कृत–साहित्य में उपलब्ध शास्त्रों का अध्ययन करने पर यह तथ्य सामने आता है कि पाप कर्मों की कोई एक सर्वमान्य परिभाषा निर्धारित नहीं की जा सकती। पाप कर्मों को प्रायः धर्म से जोड़कर देखा जाता है। धर्म से अभिप्राय जो धर्म का पालन न करे वह पापी है। कालान्तर में धर्म की विवेचना ही इतनी विवादास्पद होती चली गयी कि समाज के पोंगा पंडितों ने धर्म की उलटी सीधी व्याख्या प्रस्तुत करनी प्रारम्भ कर दी। तर्कों का स्थान अन्धविश्वासों ने लेना प्रारम्भ कर दिया तथा भोली–भाली, कम पढ़ी लिखी जनता का धर्म की आड़ में शोषण होना प्रारम्भ हो गया।

एक अन्य अवधारणा के अनुसार पाप कर्मी वह है जो ईश्वर के बनाए हुए नियमों को तोड़ता है। शास्त्रों में वर्णित ईश्वरीय नियमों का पालन नहीं करता। पाप कर्मों की विवेचना ऋग्वेद में भी उपलब्ध होती है। ऋग्वेद की पातक सम्बन्धी अवधारणा 'ऋत्' पर आधारित है।[1] ऋग्वेद में मुख्य रूप से ऋत् के तीन स्वरूप बताए गए हैं– प्रकृति की गति, देवताओं की पूजा की सम्यक् विधि[3], मानव का नैतिक आचरण। बहुत से वैदिक देवता ऋत् के दिक्पालों के रूप में वर्णित हैं यथा मित्र, वरुण[4], अर्यमा, अग्नि[5] आदि। वैदिक ऋषि पाप कर्मों को लेकर अत्यधिक सचेत दिखायी देते हैं। वे देवताओं से पापों से मुक्ति के लिए क्षमा याचना करते हैं।[6] ऋग्वेद में स्थान–स्थान पर पाप के लिए अनेक शब्द प्रयुक्त हुए हैं जैसे अहंस्, दुष्कृत, पापत्व। इसके अतिरिक्त एक ही मंत्र में अनृत, द्रोह[7] तीनों पापवाची पदों का एक साथ प्रयोग किया गया है। इससे स्पष्ट है कि ऋग्वैदीय काल में पाप भावना का उदय हो चुका था। वैदिक ऋषियों ने भिन्न–भिन्न मंत्रों में विभिन्न कुकृत्यों को पाप माना है, जैसे– सुरापान, क्रोध, द्यूत आदि। ऋग्वेद में पाप की व्याख्या इस प्रकार दी गयी है–

विद्वानों ने सात मर्यादाएँ बनायी हैं। वह मनुष्य जो इनमें से किसी एक का भी अतिक्रमण करता है, पापी हो जाता है।[9] वे मर्यादाएँ निम्नलिखित हैं

स्तेय (चोरी), तल्पारोहरण (गुरु की शैय्या को अपवित्र करना), ब्रह्महत्या, भ्रूणहत्या, सुरापान, एक ही दुष्कृत को बार–बार करना, अनृतोद्य (किसी पापमयकृत्य के विषय में झूठ बोलना)।[10] पापों की यह संख्या वैदिक ग्रन्थों, उपनिषदों आदि में पृथक्–पृथक् है। छान्दोग्योपनिषद के एक उदाहरण में पाँच पापियों के नाम गिनाये गए हैं– सोना चुराने वाला, सुरा पीने वाला, गुरु की शय्या अपवित्र करने वाला, ब्राह्मण की हत्या करने वाला तथा जो इन चारों के साथ रहता है।[11] बृहदारण्यकोपनिषद ने चोर एवं भ्रूण हत्यारे को महापापियों में गिना है।[12] याज्ञवलक्य स्मृति में पाप को इस प्रकार परिभाषित किया गया है 'जो निहित है उसे न करना, जो वर्जित है उसे करना, इन्द्रिय निग्रह न करने से मनुष्य गिर जाता है (पापी हो जाता है)।[14] कात्यायन ने पापों को पाँच भागों में बाँटा है– महापाप, अतिपाप, पातक, प्रासंगिक, उपपातक।

पाप की श्रेणी में मनुष्य के कौन–से कर्म गिने गए हैं, यदि इस पर दृष्टिपात करें तो विदित होता है कि वैदिक ऋषियों, स्मृतिकारों, उपनिषदकारों ने भिन्न–भिन्न कुकृत्यो को पाप माना है तथा इनकी संख्या भी विभिन्न है जैसे कि ऋग्वेद में मोटे तौर पर सात, छान्दो में पाँच, बृहदारण्यक में दो महापाप माने हैं तो आपस्ताम्बधर्म सूत्र ने पापों को दो कोटियों में बाँटा है[15] आदि। विभिन्न धर्म ग्रन्थों ने ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्रिय एवं शूद्र आदि के लिए पृथक्–पृथक् पाप माने हैं। अधिकांशतः पाँच पापों की ही अवधारणा महापापों के अन्तर्गत स्वीकारी गयी। साथ ही पापों को मूलतः पाप श्रेणियों में विभक्त किया गया है– महापातक, अतिपातक, पातक, प्रासंगिक पातक एवं उपपातक। इनमें महापातकी प्राणों का हरण करने वाला या वध करने वालों को माना गया विशेषकर ब्रह्महत्यारे को महापापी माना गया। मनु ने महापाप को इस प्रकार व्याख्यायित किया–

जहाँ बहुत से व्यक्ति किसी एक उद्देश्य को लेकर अस्त्र–शस्त्र सज्जित खड़े हों यदि वहाँ उनमें से कोई एक व्यक्ति किसी की

हत्या कर डालता है तो सभी उस हत्या के अपराधी होते हैं। भारतीय दंड विधान (इण्डियन पेनल कोड) की 34वीं धारा मनु की इस उक्ति के बहुत निकट है।

कालान्तर में इस महापातक में से ब्रहम् की हत्या करने वाला ही महापापी होगा यह अवधारणा धूमिल होती गयी तथा किसी भी जाति विशेष के व्यक्ति की हत्या करने वाला दण्ड का अपराधी माना गया। यह अवधारणा उचित भी है क्योंकि किसी भी निरपराध की हत्या पाप है और वह हत्या करने वाला चाहे ब्राह्मण हो, क्षत्रिय हो, वैश्य हो या शूद्र हो समान रूप से हत्यारा है। प्राचीन धर्मशास्त्रियों की इन अवधारणाओं (कि ब्राह्मण की हत्या ही महापाप है या हर वर्ग के अनुसार दण्डपृथक होता था) के क्या कारण रहे वहाँ इसका कोई संतोषजनक उत्तर प्राप्त नहीं होता। यह कहा जा सकता है कि ब्राह्मण क्योंकि शिक्षित वेदपाठी होते थे जिस पर समाज को ज्ञान देने, एक सभ्य, जागरुक समाज बनाने का दायित्व रहता था, कदाचित् इस कारण उनकी हत्या को महापाप माना गया हो। इसका एक दुष्परिणाम यह हुआ कि ब्राह्मण वर्ग स्वयं को समाज का भगवान समझने लगा और धीरे–धीरे यह वर्ग ही अत्याचार करने में समाहित होने लगा। ऋषियों द्वारा की गयी व्याख्याएँ और नियमों को मनमाने ढंग से गढ़ने लगा और आततायी होता गया भविष्य में ये चलन धर्मपरिवर्तन का एक बड़ा कारण बना और वर्तमान में इस नियम में सुधार हुआ।

सुरापान

दूसरा महापाप सुरापान माना गया।[16] सुरा अर्थात् मदिरा प्रश्न यह उठता है कि सुरा को महापाप क्यों माना गया। आचार्य मनु ने (11. 93) सुरा को भोजन मल कहा है। सुरा के ग्यारह प्रकार प्राचीन ग्रन्थों में मिलते हैं। मनु ने तीन प्रकार की ही सुरा का वर्णन किया है– गुड़, आटे, मधूक (महुआ) से बनी सुरा उसमें भी सबसे अधिक दोषी सुरा आटे से बनी हुयी मानी।[17] सम्भवतः इसका प्रमुख कारण सड़े गले या कीड़े पड़े आटे से यह सुरा बनायी जाती है जो स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त हानिकारक रहता होगा। अतः इसे महापाप बताया गया क्योंकि उस समय महापाप के लिए प्रायश्चित करना अनिवार्य होता था। ये प्रायश्चित भी बहुत कष्टकारी होते थे सम्भवतः यह भय दिखाकर मदिरापान से जन को दूर रखने का प्रयास किया गया। यहाँ एक बात की ओर ध्यान देना अनिवार्य है कि सुरापान की मनाही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य के लिए थी[18] शूद्र वर्ग के लिए नहीं। हाँ शूद्र स्त्री के लिए सुरापान की मनाही थी।

निष्कर्षतः यही कहा जा सकता है कि क्योंकि शूद्र की जीविका उच्च वर्ग पर निर्भर होती थी। उन्हें उच्छिष्ट (बासी बचा हुआ भोजन) ही मिलता था अतः उन्हें इस प्रकार के भोजन का अभ्यास था। सम्भवतः उनके शरीर को वह उतनी हानि नहीं पहुँचाती होगी।

स्तेय

अर्थात् चोरी को तीसरा बड़ा महापाप माना गया है। अधिकांश प्राचीन ग्रन्थों ने सोने की चोरी को चोरी माना है। चोरी की परिभाषा प्रायः यही मानी गयी जब कोई व्यक्ति दूसरे की सम्पत्ति के लोभ से तथा स्वामी की सहमति के बिना गुप्त रूप से या प्रकट रूप से दिन में अथवा रात में कभी भी, उसकी सम्पत्ति को हर लेता है तो उसे चोरी का महापातक लगता है।[19] यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि सोने की चोरी तोल में कम से कम 16 माशा होनी चाहिए। इससे कम होने पर चोरी का पाप नहीं लगता। साथ ही अब्राह्मण के यहाँ (क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र) वह 16 माशा से अधिक चुराता है तब उसे महापाप नहीं साधारण पाप ही लगता है।

यदि कोई व्यक्ति पकते हुए अनाजों में से थोड़ा सा चना, दाल आदि ले लेता है[20] या बैलगाड़ी में जाते हुए बैलों के लिए थोड़ी घास खेतों से ले लेता है, अथवा गायों के लिए घास ईंधन ले लेता है तो चोरी का अपराधी नहीं होगा। गौतम ने तो यहाँ तक स्वीकार किया कि यात्रा पर जाते हुए मार्ग में भोजन कम पड़ जाए तो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तीनों वर्णों के जन यदि खेत से गन्ना, गाजर, मूली आदि ले लेते हैं तो चोरी के अपराधी नहीं होते।[21]

चोरों को महापातक मानने के पीछे यह अवधारणा प्रतीत होती है कि कोई व्यक्ति अपने कठोर परिश्रम की आय से स्वर्ण कमाता है, अकस्मात् ही कोई उसके इस परिश्रम की कमाई को चुरा ले तब उस व्यक्ति को कितनी पीड़ा होगी इसका अनुमान लगाया जा सकता है। स्वर्ण चले जाने से एक ओर तो वह निर्धन हो जाता है दूसरी ओर उसके मन में हताशा का उदय हो जाता है। कर्म के प्रति रुचि नहीं रहती। निर्दोष होने पर भी उसे दरिद्रता का जीवन जीने के लिए बाध्य होना पड़ता है। वैदिक काल में स्वर्ण और गाय की चोरी करने वाले को ही चोर माना गया है, खाने पीने की या सामान्य वस्तुओं की चोरी किन्हीं परिस्थितियों के कारण कर लेने को चोरी नहीं माना गया है।

ऋग्वेद में तरस्कर, एवं तायु शब्दों का उल्लेख मिलता है। गुप्त धनों को जानने वाला, रात्रि में दिखायी देने वाले को तस्कर[22] कहा गया है तथा स्तेन शब्द गाय चुराने वाले[23] के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। ऋग्वेद के अनुसार ही चोर वह होता है जो सम्पत्ति को गुप्त रूप से चुराता है, तस्कर वह है जो खुले आम साहसपूर्वक चोरी करता है। ऋग्वेद के ऋषियों को गायों की चोरी की भी चिन्ता रहती थी। अतः किन वस्तुओं की चोरी पाप मानी गयी है इस पर दृष्टिपात करें तो विदित होता है–वस्तुएँ तीन प्रकार की मानी गयी है– (1) साधारण जैसे– मिट्टी के बर्तन, खाद्य पदार्थ आदि, (2) मध्यम रेशम आदि के वस्त्र, गाय बैल के अतिरिक्त अन्य पशु, (3) गम्भीर– सोने के जेवर, स्त्रियाँ, पुरुष, पालतू जानवर, ब्रहमणों या मन्दिरों में धन चोरी करना। वैदिक काल में प्रमुख व्यवसाय पशुपालन रहा है, उसमें भी गौ को प्रमुखता दी गयी है। अतः गायों की चोरी महापाप की श्रेणी में आयी जिस गाय के दूध से नवजात शिशुओं का पालन होता है जो उनका सम्पूर्ण आहार माना गया तथा जिसकी खाल से लेकर गोबर एवं मूत्र तक प्रयोग में आते हैं उसका मारा जाना वास्तव में अभिशाप है। आज भी उसको मारना जघन्य अपराध माना जाता है। यह पृथक् बात है कि गायों को मारना आज भी नहीं रूका है। इसी प्रकार आचार्य मनु ने कुलीन विशेषकर स्त्रियों के (अपहरण) चोरी को भी महापाप माना है।[24] इसी प्रकार अकारण किसी को बन्दी बनाने, सेंधमारी करने, हाथियों की चोरी आदि को भी महापातक की श्रेणियों में रखा गया है।

ऋग्वेद काल में पशुपाल प्रमुख था, स्मृतियों, पुराणों तक आते–आते समाज में अनेक अवांछनीय जघन्य अपराध प्रारम्भ हो गए जैसे– जुआरी, नकली वैद्य, नकली वस्तुओं का व्यापार करना, जादू दिखाकर ठगना, हस्तरेखा देख झूठा भविष्य बताना, वैश्या भवनों का बनना, मदिरालय आदि खुलना। अतः इसके लिए नियम बनाना दण्ड देना अनिवार्य था।

पाँच महापापों में गुरु–अंगनागमन को चौथा महापाप माना गया। याज्ञवलक्य और वसिष्ठ ने गुरु तल्प शब्द का प्रयोग किया है।[25] इन दोनों ही शब्दों का अर्थ है गुरु की शय्या या पत्नी को अपवित्र करना है। गुरु के मौलिक अर्थ के विषय में स्मृतिकारों में कुछ मतभेद दिखायी देता है। मनु, याज्ञवलय ने गुरु का अर्थ पिता माना है। कतिपय स्मृतिकारों ने गुरु अंगना का अर्थ स्वयं अपनी माता किया है। प्रायश्चित प्रकरण[26] में भवदेव ने लिखा है कि इसका तात्पर्य केवल अपनी माता से ही नहीं है अपितु पिता की जाति वाली विमाता से भी है। क्रमशः इसका अर्थ व्यापक होता गया तथा गुरु की पत्नी, बहन अन्य स्त्रियों को भी इसमें रखा जाने लगा जैसे– मौसी, सास, चाची, पिता की बहिन शरणागत स्त्री, सन्यासिनी आदि।

स्मृतिकारों ने धोखे से बलात्कार की गयी नारी को पाप की श्रेणी में नहीं रखा किन्तु उसके लिए कृच्छ् एवं पराक नामक प्रायश्चित निश्चित कर दिए अर्थात् उन्हें घर में ही रहना होता था, श्रृंगार न करना, पृथ्वी पर सोना, केवल जीवन निर्वाह के लिए भोजन करना आदि कठोर जीवन निश्चित किया गया। प्रायश्चित के पश्चात् वह अपनी पूर्व स्थिति प्राप्त कर लेती थी, जो नारियाँ सहमति से पर पुरुष सहवास करती थीं वे दण्ड की अधिकारी होती थीं। उन्हें मृत्युदण्ड तो नहीं दिया जाता था किन्तु हलके दण्ड की व्यवस्था थी।

महापातकी संसर्ग– चार महापापियों के साथ उठने बैठने वाला, उनके साथ भोजन शयन करने वाला व्यक्ति यदि एक वर्ष भी साथ रह ले, तो वह भी महान पापियों की कोटि में आ जाता है। आचार्य बृहस्पति ने इस प्रकार के नौ संसर्गों का उल्लेख किया है। इनमें प्रथम पाँच हलके पाप हैं तथा पश्चाद्वर्ती चार महापाप हैं।

वास्तव में इस पाँचवे महापातक की गणना का आधार पापियों को समाज में बढ़ावा न देना प्रतीत होता है क्योंकि ऐसे पापियों के साथ समाज के अच्छे या मध्यम श्रेणी के अनेक जनों के सम्पर्क में रहने से उन्हें अपने कुकृत्यों का अनुभव नहीं होता और पाप करने का उनका अभ्यास बना रहता है। साथ ही यह भी एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि व्यक्ति जैसों के साथ उठता बैठता खाता पीता है उसका भी वैसा ही आचरण बन जाता है। अतः अच्छे व्यक्तियों का आचरण भी कलुषित होने लगता है और पाप कर्मों को समाज में अधोषित मान्यता मिलती चली जाती है। संगति व्यक्ति के साथ क्या–क्या नहीं कर सकती तथा जैसा खाए अन्न वैसा पाए मन आदि लोकोक्तियाँ भी इसी ओर इंगित करती हैं। अतः ऐसे पापी व्यक्तियों को अलग–थलग कर देना नितान्त अनिवार्य है। समाज से कटा हुआ मनुष्य सुचारु जीवन नहीं जी सकता अतः वह बाध्य होता है ऐसे कुकर्मों को छोड़ने के लिए।

इसके अतिरिक्त कतिपय उपपातकों का भी विवेचन संस्कृत साहित्य में प्राप्त होता है। समयानुसार इनमें वृद्धि होती चली गयी। कतिपय उपापातक के नाम इस प्रकार हैं– अग्निहोत्र प्रारम्भ करके बन्द कर देना, नास्तिक होना[27] आदि।

इन महापापों या उपपापों को दूर करने के लिए वैदिक ग्रन्थों के साथ–साथ स्मृति ग्रन्थों आदि में भी प्रायश्चित पर बल दिया गया किन्तु इसमें एक अन्तर स्पष्ट परिलक्षित होता है कि वैदिक उपायों में निर्ममता या कठोरता के दर्शन नहीं होते जैसे ऋग्वेद में पापमुक्त होने के लिए प्रार्थना करना,[28] यज्ञ करना[29], पाप की स्वीकारोक्ति जल मार्जन से पाप मुक्ति[30] ये ऐसे उपाय हैं जो सरलतापूर्वक किए जा सकते हैं, किन्तु स्मृति ग्रन्थों तक आते–आते यह अवधारणा जन्म कर्म से जुड़ गयी तथा स्मृतिकारों ने माना कि कर्म की समाप्ति बिना भोगे नष्ट नहीं हो सकती। अतः बुरे कर्म का बुरा और अच्छे कर्मों का अच्छा परिणाम सहना अनिवार्य है।

अतः पुराणों, स्मृति ग्रन्थों ने पश्चाताप, श्वासावरोध (प्राणायाम), तप[31] (सत्यवचन, तीनबार स्नान, एक ही दान[32])। एक ही रंग के वस्त्र पहनना आदि– यज्ञ, जप, दान[32] आदि की व्यवस्थाएँ दी। उपवास जिसमें अन्न जल का पूर्ण त्याग तथा तीर्थ यात्रा आदि का विधान किया गया।

वैदिक काल तक तो ये उपाय सम्यक् रूपेण चलते रहे किन्तु स्मृति काल तक आते–आते कठोरता आती गयी। कठोरता भी ऐसी की प्राणों का त्याग ही महापापों से छुटकारा दिला सकता था जिसका परिणाम यह हुआ कि इस धर्म के प्रति जनता की रुचि कम होती गयी और धर्मान्तरण की प्रवृत्ति बल पकड़ती गयी।

आधुनिक समय में कानूनों में कठोरता या निर्ममता नहीं है तथा ब्रह्म हत्या को छोड़कर सुरापान के लिए कोई विशेष दंड विधान नहीं है इसी प्रकार चोरी में भी कुछ वर्षों की सजा ही सुनायी जाती है। बलात्कार और अपहरण जैसे कानूनों में शिथिलता है। संगीन अपराध होने पर सजा न होने के कारण यह अपराध बहुत तीव्र गति से आगे बढ़ा है तथा बलात्कार अब सामूहिक हो गया और अपहरण एक आम घटना हो गयी। न अपराधों के आगे सरकार का ध्यान केन्द्रित हुआ है किन्तु अभी भी इसमें कठोरता की आवश्यकता है क्योंकि यह भी एक निर्विवाद सत्य है कि भय बिन होए न प्रीति। आधुनिक समय में धन की कालाबाजारी (हवाला आदि के द्वारा), सम्पत्ति हड़पना, रिश्वतखोरी, साइबर क्राइम जैसे अपराधों का वर्चस्व है जो प्राचीन समय में या तो नगण्य से ही थे या थे ही नहीं तथा ये पाप ऐसे हैं जिनसे देश की अर्थव्यवस्था डगमगाती है समाज बिखरता है अतः इन अपराधों को पाप मानते हुए कठोर दण्ड व्यवस्था के अन्तर्गत लाने की आवश्यकता है।

सन्दर्भ

1. ऋग्वेद इन तीन मंत्रों में ऋत् 12 बार प्रयुक्त हुआ है। 4.23. 8–10
2. वही– 4.3.4
3. वही– 4.3.9, 5.15.2
4. वही– 8.66.12
5. वही– 3.2.8
6. अथर्ववेद 6.5.13, 2.27.14
7. ऋग्वेद– इदमापः प्रवहत यत्किं च दुरितं मयि। यद्वाहमभिदुद्रोह यद्वा शेपअतानृतम्।। 1.23.22
8. i) कौषीतकि उ० ईश्वर की इच्छा से व्यक्ति पापी होता है। 3. 9
   ii) भगवद्गीता काम, क्रोध, और लोभ व्यक्ति को पापी बनाते हैं। 3.7
   iii) शक्तिपर्व व्यक्ति काम क्रोध से पापी बनता है। 1.63
9. वही– 10.5.6
10. निरुत्क ऋग्वेद की इन सात मर्यादाओं का उल्लेख निरुत्ककार ने किया है। 6.27
11. छान्दोग्योपनिषद– 5.10.9
12. वृहदारण्यक– 4.3.22
13. याज्ञवलक्य स्मृति– 3.2.14
14. आपस्तम्ब धर्म सूत्र– 1.7.21 – 7–11
15. मिताक्षरा टीका (या०सर०) ने मनुस्मृति के इस वाक्य को उद्धृत किया है– 3.226, 2.43
16. याज्ञ० स्मृति– 3.222
17. मनु० स्मृति– 11.54
18. मनु स्मृति– 11.93
19. आपस्तम्ब सूत्र– 1.10 – 18.1
    कात्यायन – 8.10
    योग सूत्र व्याख्या – 2.3
20. आपस्तम्ब सूत्र– 1.10.28.2
21. गौतम– 8.341
22. ऋग्वेद– 8.29.6, 1.191.5
23. वही– 6.28.7
24. मनु स्मृति– 8.323
25. प्रायश्चितकरण– पृ० 835
26. बृहस्पति द्वारा वर्णित प्रथम पाँच हल्के पाप हैं– स्थायी आसन पर बैठना, एक साथ खाना–खाना, पापी के बर्तनों में ही भोजन बनाना, उसका पुरोहित बनना आदि। चार महाकोटि के पाप हैं– विवाह सम्बन्ध बनाना, पापी को वेद पढ़ाना, एक ही पात्र में साथ भोजन करना आदि हैं।
27. वशिष्ठ– 1.23
28. ऋग्वेद– 7.86, 45, 7.89, 1–4
29. तै०सं०– 5.3.1211 – 2

30. ऋग्वेद– 1.23, 33
31. शत०ब्रा०– 79.18 – अहिंसा, कृपा आदि।
32. गौतम सोना, गौ, परिधान, घोड़ा, भूमि, तिल, घी एवं अन्न का दान करना चाहिये 19.16,